ओ३म्

का महत्त्व

लेखक : स्वामी ओमानन्द सरस्वती

आचार्य गुरुकुल झज्जर

प्रकाशक :

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (हरयाणा)

सातवीं बार ४००० | सं० २०५६ विक्रमी सन् १९९९ ई० | मूल्य ५-००

ओ३म्

दो शब्द

चाहे स्त्री हो वा पुरुष, जो भी भोजन करता है उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि भोजन की। कारण स्पष्ट है। शरीर में व्यायाम रूपी अग्नि न देने से मनुष्य का शरीर आलसी, निर्बल और रोगी हो जाता है, जिन खाद्य पदार्थों से रक्त आदि धातुओं का निर्माण तथा बल का संचय होता है, वे सड़ने लगते हैं और शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करके मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के बुरे-बुरे विचार उत्पन्न करने लगते हैं, मनुष्य की बुद्धि और स्मरण शक्ति मन्द हो जाती है और युवावस्था में ही उसे दुःखदायी बुढ़ापा आ घेरता है। यदि मानव शरीर से आनन्द उठाना है तो उसे व्यायाम तथा ब्रह्मचर्य रक्षा द्वारा स्वस्थ और बलिष्ठ करना प्रत्येक स्त्री पुरुष का परम धर्म है। इस **"व्यायाम का महत्त्व"** नाम की लघु पुस्तिका में व्यायाम से मनुष्य को परम आरोग्य अथवा आदर्श स्वास्थ्य की किस प्रकार प्राप्ति होती है मुख्यतया इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है। इसको संक्षिप्त रूप में इसीलिये निकाला गया है कि जन साधारण इसे आसानी से खरीद सके, तथा धनी मानी सज्जन इसे अपने दान से प्रचारार्थ बंटवा सकें, व्यायाम के विषय में अधिक जानने के लिए मेरे द्वारा लिखित **'व्यायाम सन्देश'** (सचित्र) पढ़ें, जिसमें देश विदेश के व्यायामों के भेद, आसनों के व्यायाम की विशेषता तथा लाभ, व्यायाम का समय और स्थान, स्त्रियों के लिए उपयुक्त व्यायाम तथा आयु के अनुसार व्यायामादि अनेक विषयों पर विस्तार रूप से लिखा गया है।

यदि कुछ भी युवकों ने इसे पढ़कर नियमित व्यायाम करने का व्रत लिया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

—सेवक

ओ३मानन्द सरस्वती

।। ओ३म् ।।

व्यायाम का महत्त्व

संसार में सर्वोत्तम और सर्वप्रिय वस्तु स्वास्थ्य ही है। रोगी तो दूसरों पर भार ही होता है। सांसारिक धन ऐश्वर्य तथा भोगविलास के सब साधनों की विद्यमानता भी रोगी के लिए दुःख का ही कारण बनती है। वह मल मूत्रत्यागादि साधारण आवश्यकताओं को भी स्वयं पूरा नहीं कर सकता। उसे प्रतिक्षण दूसरे मनुष्यों का ही सहारा और सहायता चाहिये क्योंकि रोगी सदैव अत्यन्त दुःखी होने से सर्वथा पराधीन ही रहता है। "सर्वं परवशं दुःखम्"......... "पराधीन सुपनेहु सुख नाहीं" अतः रोगी का जीवन, रोग का कष्ट भोगते-भोगते शुष्क, नीरस और अत्यन्त दुःखमय हो जाता है। संसार में नरक के साक्षात् दर्शन रोगी को ही होते हैं। इसीलिए साधारण मनुष्य भी जानते हैं "पहिला सुख निरोगी काया" स्वस्थ मनुष्य के लिए यह संसार स्वर्ग समान है। एक दरिद्र मनुष्य जो पूर्ण स्वस्थ है वही यथार्थ में धनवान् है। यदि एक चक्रवर्ती सम्राट् भी रोगपीड़ित है तो वह दुःखी, दीन, दरिद्र, रंक के समान है। रोगी स्वयं दुःखी होता और अपने इष्ट मित्रों तथा सम्बन्धियों को भी दुःखी रखता है। रोग से मनुष्य की शक्ति बल और जीवन का ह्रास होता है। किसी रोग में चाहे कष्ट वा दुःख भले ही थोड़ा हो किन्तु, अमूल्य समय और शरीर की अवश्य ही हानि और नाश होता है। रोगी मनुष्य का लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। इसलिए प्रातःस्मरणीय ऋषियों ने हमारे कल्याणार्थ कितनी उत्तम शिक्षा दी है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यम्मूलमुत्तमम्"। मनुष्य के जीवन को सफल बनानेवाला **'पुरुषार्थचतुष्टय'** अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार वा मूल साधन आरोग्य ही है। सांसारिक सुख (अभ्युदय) तथा पारलौकिक सुख (निश्रेयस्) वा मोक्ष सुख की प्राप्ति बिना आरोग्य के अनेक जन्मों में भी नहीं होती। रोगी मनुष्य के व्यवसाय धन्धे तथा सन्ध्या ईश्वरोपासनादि धर्म-कार्य सभी छूट जाते हैं। इसीलिए स्वास्थ्य ही हमारा सर्वस्व है। इसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है किन्तु अत्यन्त दु:ख की बात है कि सभी भारतवासियों का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिर रहा है। मिथ्या आहार होने से हमारा शरीर दूषित वा रोगी होता है। मनुष्य अज्ञानवश वा कुसंग के कारण अनेक व्यसनों में फंसकर अपने आहार विहार को बिगाड़ लेता है। किसी को खाने का व्यसन है, किसी को पीने का व्यसन है और किसी को वीर्यनाश वा विषय-भोग का व्यसन है, न जाने कितने व्यसन हैं। भला इन चस्कों, स्वादों और व्यसनों ने ही हमारे भोजन छादन और आहार-विहार को बिगाड़ा है तथा हमारे स्वास्थ्य का दीवाला निकाला है। कहा भी है **"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगिता"** मिथ्या आहार विहार से वात पित्त कफादि दोषों में विषमता आजाती है अर्थात् ये घट बढ़ जाते हैं। यही रोग का कारण है। जब ये समावस्था में रहते हैं तो हमारा शरीर नीरोग वा स्वस्थ रहता है। महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं–

समदोष: समाग्निश्च समधातुमलक्रिय:।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

महर्षि जी ने सागर को गागर में भर दिया है। इसका भावार्थ यह

है– जिस मनुष्य के दोष वात, पित्त और कफ, अग्नि (जठराग्नि) रसादि सात धातु, सम अवस्था में तथा स्थिर रहते हैं, मल मूत्रादि की क्रिया ठीक होती है और शरीर की सब क्रियायें समान और उचित हैं, और जिसके मन इन्द्रिय और आत्मा प्रसन्न रहें वह मनुष्य स्वस्थ है।"

महर्षि धन्वन्तरि जी के कथन का सार यह है कि जिस मनुष्य के शरीर में वात, पित्त और कफ तीनों दोष समान अवस्था में रहते हैं, वे कभी घटते बढ़ते न हों, पेट की अग्नि भी सम हो अर्थात् उचित मात्रा में खाये हुए भोजन को भलीभांति पचा सके, जिससे क्षुधा (भूख) खूब अच्छी लगे, मल मूत्रादि का त्याग ठीक-ठीक होता हो, शरीर में रस से लेकर वीर्य पर्यन्त सातों धातु भलीभांति बनते हों और शरीर का अंग बनकर इसे पुष्ट और बलवान् बना रहे हों, किसी धातु का क्षय वा नाश न हो और चरबी मेदादि की अधिक वृद्धि भी न हो अर्थात् मनुष्य में बल शक्ति ओज तेज उत्साहादि गुण पर्याप्त मात्रा में पाये जायें, शरीर में किसी प्रकार का कष्ट वा पीड़ा न हो, मन आत्मा सदैव प्रसन्न रहें और सब इन्द्रियां अपना-अपना कार्य भलीभांति करती हों वह मनुष्य पूर्ण स्वस्थ और नीरोग है। ऐसा आदर्श स्वास्थ्य क्या सबको प्राप्त हो सकता है ? क्या प्रत्येक मनुष्य पूर्ण स्वस्थ्य और पूर्ण सुखी हो सकता है ? अवश्यमेव। परम पिता परमात्मा ने हमें रोगी और दुःखी होने के लिए नहीं बनाया है। हम तो दुःखों और रोगों को स्वयं बुलाते हैं। फिर रोते और पछताते हैं। पूर्ण सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति का रहस्य सुश्रुत में महर्षि धन्वन्तरि जी स्वयं बताते हैं।

सच्चे सुख और पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन व्यायाम ही है।

शरीरोपचयः कन्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा।। १।।
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामदुपजायते।। २।।

व्यायाम से लाभ

महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं। व्यायाम से शरीर बढ़ता है। शरीर की कान्ति वा सुन्दरता बढ़ती है। शरीर के सब अंग सुड़ौल होते हैं। पाचनशक्ति बढ़ती है। आलस्य दूर भागता है। शरीर दृढ़ और हल्का होकर स्फूर्ति आती है। तीनों दोषों की (मृजा) शुद्धि होती है।। १।।

श्रम थकावट ग्लानि (दुःख) प्यास शीत (जाड़ा) उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है।

महर्षि जी के उक्त कथन पर भलीभांति विचार करना है। जो भोजन हम प्रतिदिन करते हैं वह प्रथम हमारे पक्वाशय (उदर) में, पेट की अग्नि जिसे जठराग्नि कहते हैं, खाये हुए भोजन को पकाती है, आमाशय (पेट) को पाकशाला के समान समझो। यदि रसोई में अग्नि भलीभांति नहीं जलती तो भोजन अच्छा वा सर्वथा नहीं पक सकता। इसका फल यह होगा कि सारा परिवार भूखा रहेगा वा खराब भोजन करके रोगी पड़ जायेगा। जिसकी जठराग्नि वा आमाशय ठीक प्रकार कार्य नहीं करता उसका खाया हुआ भोजन भली प्रकार से नहीं पचता और शरीर का अंग भी नहीं बनता। फिर सारा शरीर रोगी वा निर्बल हो जाता है। जिसकी पाचनशक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती

है उसको भोजन शीघ्र तथा अधिक मात्रा में पचता है। भोजन पचने पर आमाशय से ही शेष अंगों को पहुंचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। तीव्र जठराग्नि भोजन के पौष्टिक सार भाग को मल भाग में नहीं जाने देती। क्योंकि भोजन के ठीक पचने पर मल भाग (मल मूत्रादि) पृथक् तथा शुद्ध भाग (रसादि) पृथक् हो जाते हैं। जिसकी जठराग्नि ठीक कार्य करती है उसका खाया हुआ पौष्टिक भोजन व्यर्थ नहीं जाता। उसका पचकर रस बन जाता है। फिर रस से अन्य धातुओं का निर्माण होता है। जैसा कि महर्षि धनवन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं–

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदासोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः।।

अर्थात् रस से रक्त (लहु), रक्त से मांस, मांस से मेद (चरबी) बनता है। मेद से अस्थि (हड्डी), अस्थि से मज्जा, मज्जा से शरीर के सार अमूल्य रत्न शुक्र (वीर्य) की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार क्रमशः सातों धातुयें बनती रहती हैं जो शरीर को धारण, पुष्ट और दृढ़ करती हैं। स्त्री के शरीर में जो सातवीं अति शुद्ध धातु बनती है उसको रज कहते हैं। दोनों में केवल भेद इतना है कि वीर्य कांच के समान चिकना और श्वेत (सफेद) होता है। स्त्री का रज लाख के समान लाल होता है। ये शरीर को धारण करती हैं इसलिए धातु कहलाती हैं। अथवा यों कहिए धातुओं ही से शरीर का निर्माण, वृद्धि वा उपचय होता है और इनकी घटती वा ह्रास से ही शरीर का नाश होता है। इसलिए महर्षि धनवन्तरि जी महाराज ने कहा–**"आषोडशाद्वृद्धिः"** सोलह वर्ष से पच्चीस वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी जाती है। इस आयु में

वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि (बढ़ती) होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया, पीया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बनकर शरीर का अंग बन जाता है और इसे दृढ़ और पुष्ट बनाता हे। जिसकी जठराग्नि मन्द होती है वह वृद्धि अवस्था में निर्बल तथा युवावस्था में भी बुड्ढा ही रहता है। सार यह है कि हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है, जो भोजन को पचाती, पौष्टिकभाग को ग्रहण करती और मलभाग को बाहर निकालती है और रसादि धातुओं से मनुष्य शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता आजाती है। वह नस नाड़ियों के द्वारा भोजन से रस को इस प्रकार खेंचती रहती है जिस प्रकार जल को स्पंज वा मसि (स्याही) को मसिशोषक (स्याहीचूस) और यही उष्णता शरीर में रस से रक्तादि धातुओं का निर्माण और संचार करती है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना (गर्मी) का संचार होता है उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में रक्त उत्तेजित होकर नस नाड़ियों के द्वारा अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ने लगता है। नस नाड़ियां सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं। सारे शरीर में रक्तसंचार भलीभांति होता है और यथायोग्य सब अंगों को शक्ति प्रदान करता है। विद्युत्-तार बिना विद्युत्-धारा (Current) के सर्वथा निस्तत्त्व वा शक्तिहीन है उसी प्रकार रक्तसंचारिणी सब नस नाड़ियां रक्तसंचार के बिना व्यर्थ हैं और रक्तसंचार बिना रक्त के बने हो कैसे ? रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से, भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और उष्णता की जननी है व्यायाम और

इस उष्णता से रस, रस से रक्तादि बनता और फिर रक्त नस नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता तथा शक्तिसंचार करता है। व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती अपितु इसमें यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल मूत्रादि द्रव्यों को बाहर निकाल फैंकती और शरीर को शुद्ध पवित्र बनाती है। जिस प्रकार झाड़ू घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है इसी प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल मूत्रादि रूपी कूड़े करकट को बाहर निकाल फैंकती है और यह उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोमकूप (मसामों) आदि के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्मा, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर से बाहर निकालकर छोड़ती है। यहां तक कि व्यायाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस विषय में प्रो० राममूर्ति के जीवन की एक घटना है। योरुप में इन्हें नीचा दिखाने के लिए कुछ पापियों ने भोजन में धोखे से विष दे दिया। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने एक साथ दस पन्द्रह हजार दण्ड निकाल डाले, सब विष स्वेद (पसीने) के द्वारा बाहर निकल गया और वे बच गए। व्यायाम करनेवाले का शरी अत्यन्त शुद्ध वा निर्मल और निर्दोष हो जाता है। मल मूत्रादि ठीक रीति से निकल जाते हैं। कभी मलबन्ध (कब्ज) नहीं होता। उसे यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि टट्टी आयेगी वा नहीं। शौच दोनों समय खुलकर आता है, आमाशय वा जठराग्नि को बल देनेवाला सबसे सस्ता

और सर्वोत्तम योग (नुस्खा) व्यायाम ही है। व्यायाम करनेवाले को मन्दग्नि का रोग कभी नहीं होता। वह जो भी पेट में डाल लेता है सब कुछ शीघ्र ही पचकर शरीर का अंग बन जाता है। उस का खाया पीया घी, दूध आदि पौष्टिक भोजन उसके शरीर को ही लगता है टट्टी में नहीं निकलता। अत: उसकी बल शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाती है। उसके अंग प्रत्यंगों की वृद्धि यथायोग्य होती है। शरीर के अंगों को सुड़ौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना व्यायाम का प्रथम कार्य है। यदि कोई मनुष्य केवल एक वर्ष निरन्तर नियमपूर्वक किसी भी व्यायाम को करले, तो उसका शरीर भी सुन्दर और सुदृढ़ बनने लगता है और जो सदैव श्रद्धापूर्वक दोनों समय यथाविधि व्यायाम करते हैं उनका तो कहना ही क्या, उनके शरीर की सभी मांसपेशियां लोहे की भांति कड़ी और सुदृढ़ हो जाती हैं और सभी नस नाड़ियां, सारा स्नायुमण्डल और शरीर का प्रत्येक अंग वज्र वा इस्पात (फौलाद) के समान कठोर और सुदृढ़ हो जाता है, चौड़ी उभरी हुई छाती, लम्बी सुडौल और गठी हुई भुजाएं, कसी हुई पिण्डलियां, चढ़ी हुई जंघायें, विशाल मस्तक तथा चमचमाता हुआ रक्त वर्ण (लाल) मुखमण्डल उसके शरीर की शोभा को बढ़ाता है। यथाविधि व्यायाम करने से शरीर का प्रत्येक अंग यथेष्ट वृद्धि को प्राप्त हो अत्यन्त सुन्दर सुदृढ़ और सघन बन जाता है। शरीर पर व्यर्थ का मांस वा मेद (चर्बी) चढ़कर उसे ढीला नहीं करने पाता, पेट शरीर से लगा रहता है, बढ़ने नहीं पाता। महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज लिखते हैं–

> न चास्ति सदृशं तेन किंचित्स्थौल्यापकर्षणम्।
> न च व्यायामिनं मर्त्यमर्दयन्त्यरयो भयात्।। १।।

न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति।
स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च।। २।।
वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम्।। ३।।

अर्थ–अधिक स्थूलता को दूर करने के लिए व्यायाम से बढ़कर कोई और औषधि नहीं है, व्यायामी मनुष्य से उसके शत्रु सर्वदा डरते हैं और उसे दुःख नहीं देते।। १।।

व्यायामी मनुष्य पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता, व्यायामी पुरुष का शरीर और हाड़ मांस सब स्थिर होते हैं।। २।।

जो मनुष्य जवानी, सुन्दरता और वीरतादि गुणों से रहित है उसको भी व्यायाम सुन्दर बनाता है।। ३।।

ठीक ही है व्यायाम करनेवाले का शरीर बड़ा कसा हुआ और सुता हुआ अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय होता है। रंग रोगन निखर आता है, मुख पर क्या सारे शरीर पर लाली, अद्भुत कान्ति और तेज चमचमाता है। बुढ़ापा उसके पास आता हुआ घबराता है। व्यायाम करनेवाले से शत्रु भी भय खाता है। रोग, बुढ़ापा और मोटापे की तो क्या बात, मृत्यु को भी चार ठोकरें लगाता है। वह गुणों की खान और उसका शरीर सुन्दरता का प्रतीक (नमूना) बन जाता है। आ हा ! यदि ऐसा युवक लंगोट बांधकर खड़ा होजाये तो दर्शकों की यही इच्छा रहती है कि इसके सुन्दर शरीर को देखते ही रहें। उसका आदर्श स्वास्थ्य और मनोहर मानुष देह की कमनीय कान्ति उनके मन को मोह लेती है। मोहे क्यों नहीं, जब जो पौष्टिक भोजन उसने खाया वह पूर्णतया पच गया और जो उसका सार (तत्त्व) वीर्य बना वह भी व्यायाम द्वारा पचकर रक्त में मिल जाता है और शरीर का ही अंग बन जाता है।

"वीर्यं वै बलम्" वीर्य तो शक्ति और बल का भण्डार है। व्यायाम से इसकी ऊर्ध्व गति हो जाती है और यह ओज के रूप में चमकने लगता है। वीर्य की अधोगति होती ही नहीं और वीर्य के नाश और पतन की संभावना ही नहीं रहती। शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आजाती है। इसलिए महापुरुषों ने व्यायाम को वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन माना है। व्यायामी पुरुष को जागृत वा स्वप्नावस्था में भी किसी प्रकार भी वीर्यनाश का भय नहीं रहता। फिर ऐसे वीर्यवान् मनुष्य का शरीर क्यों नहीं सुन्दर और सुडौल बने, क्यों नहीं उसके पवित्र और परिपुष्ट देह पर मनोहर कान्ति और सुन्दर छवि छाये। व्यायामप्रेमी के विचार सदैव शुद्ध और पवित्र रहते हैं। वह कुसंग, कुत्सित और कामुकता के दुष्ट विचारों से सर्वथा दूर रहता है। यदिं किसी को कुसंस्कारवश बुरे विचार तंग ही करें और किसी प्रकार भी वश में न आयें तो उसी समय तेज दौड़ आरम्भ करदे अथवा कोई भी व्यायाम करने लग जाना चाहिए, फिर देखिए कि दुष्ट विचार कैसे पूंछ दबाकर भागते हैं। उनका पता भी न चलेगा कहां गए। कामवासना का वेग कितना भी प्रबल क्यों न हो तुरन्त ही दब जायेगा। व्यायाम का स्वाद (चस्का) व्यभिचार की भावना को सर्वथा समूल नष्ट कर देता है। नीच से नीच मनुष्य यदि नियमपूर्वक व्यायाम करने लग जाये तो वह स्वयं नीचता से घृणा करने लगता है। नियमित व्यायाम से आचारहीन व्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। व्यायाम से मनोविकारों की अन्त्येष्टि हो जाती है और मन सब इन्द्रियों का राजा है, जब मन ही शुद्ध पवित्र होकर वश में आजाता है तो शरीर और इन्द्रियों के सब दोष दूर होकर वे स्वयं शान्त और पवित्र हो जाती हैं।

आत्मा को शम और दम की शक्ति प्राप्त होती है। व्यायाम से अन्दर और बाहर की शुद्धि (मृजा) और सफाई हो जाती है। वह सर्वथा शुद्ध पवित्र और देवता बन जाता है। ऐसी अवस्था में व्यायाम करनेवाले के लिए वीर्यरक्षा वा ब्रह्मचर्य का पालन वाम हस्त का काम हो जाता है।

महर्षि पतंजलि के कथनानुसार **"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"** ब्रह्मचर्य पालन से अपूर्व बल और शक्ति की प्राप्ति होती है। निर्बलता कोसों दूर भागती है। निर्बलता तो आलसी मनुष्य के द्वार पर ही डेरा लगाती है। यही मनुष्य को अधिक कामी और विलासी बनाती है। व्यायाम आलस्य का परम शत्रु है। जब प्रतिदिन मनुष्य नियम से व्यायाम करता है तो उसे शरीर से जान बूझकर परिश्रम करना पड़ता है, और इस प्रकार निरन्तर व्यायाम करते रहने से उसका परिश्रम करने का स्वभाव ही बन जाता है, फिर कैसा आलस्य और कैसा प्रमाद। वहां आलस्य को कहां ठौर ठिकाना। व्यायाम से डरकर आलस्य सैंकड़ों कोस दूर भाग जाता है। व्यायामी प्रायः जलते हुए मकानों, डूबते हुए लोगों को बचाते हुए देखे गये हैं। व्यायाम से शरीर हलका फुलका और फुर्तीला हो जाता है। विचित्रता यह है कि व्यायाम अधिक स्थूल (मोटे) मनुष्य को पतला और पतले को मोटा बनाता है और यही संसार में देखने में आया है कि फौजी भाइयों में बुढ़ापे में भी कितनी स्फूर्ति और उत्साह होता है क्योंकि उन्हें नियमित व्यायाम (पीटी) करना होता है। इसी कारण उनमें आलस्य नाम को भी नहीं होता और कार्य करने के लिए प्रतिक्षण तैयार रहते हैं। यह सब व्यायाम का फल है।

व्यायाम के विषय में फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते झूलनेवाले ब्र० रामप्रसाद जी लिखते हैं "मैं मन्दिर में आने-जाने लगा, पुजारी जी मुझे ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश देते थे, वह मेरे पथप्रदर्शक बने। मैंने एक

दूसरे सज्जन की देखादेखी व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। अब तो मुझे भक्ति मार्ग में कुछ आनन्द प्रतीत होने लगा और चार पांच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा, मेरी सब आदतें और कुभावनायें जाती रहीं। इसके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा, इससे तख्ता ही पलट गया। **सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन में एक नया पृष्ठ खोल दिया।** मैंने उसमें उल्लिखित कठिन ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया। मैं एक कम्बल को तख्त पर बिछाकर सोता और प्रात:काल चार बजे से ही शय्या त्याग देता। स्नान सन्ध्यादि से निवृत्त हो व्यायाम करता। व्यायामादि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित होगया था और रंग निखर आया था किन्तु मन की वृत्तियां ठीक न होतीं। सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था इसी कारण कभी-कभी स्वप्नदोष होजाता, मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया, केवल थोड़ासा दूध ही रात को पीने लगा। फिर किसी सज्जन के कहने से मैंने नमक खाना भी छोड़ दिया केवल उबालकर साग या दाल से एक समय भोजन करता। मिर्च खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के सब दोष दूर होगये और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय होगया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

ब्र० रामप्रसाद जी के विषय में लिखा है "उनमें असाधारण शारीरिक बल था। घोड़ा चढ़ने और तैरने आदि में वे पूरे पण्डित थे। थकान किसे कहते हैं वे जानते ही न थे। साठ-साठ मील बराबर चलकर भी आगे चलने का साहस रखते थे। व्यायाम और प्राणायाम वे इतना करते थे कि देखनेवाले आश्चर्यान्वित होते थे। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और बंगला चार भाषायें भली-भांति जानते थे। जब आप अंग्रेजी की दशवीं कक्षा में

थे, आपकी आयु १९ वर्ष की थी। मैनपुरी विप्लव दल के नेता श्री गेंदालाल दीक्षित को ग्वालियर की जेल से छुड़ाने के वास्ते अपने साथ १० और विद्यार्थियों को लेकर जिनकी आयु २० वर्ष से न्यून थी, पहली डकैती डाली थी। यह डकैती समाप्त ही न होने पाई थी कि गांव में खबर होगई और चारों ओर से ईंटे चलने लग गईं। यह देखकर लड़के घबरा गए। लाड़-प्यार के पाले गए स्कूल के उन लड़कों ने अब तक ऐसा भयंकर कार्य काहे को किया था। ऐसे समय में श्री रामप्रसाद जी ने बड़े साहस और दृढ़ता से काम लिया। आपने जिस ओर से ईंटे आ रही थीं उधर जाकर कहा–ईंटें बन्द करदो वरना गोली से मार दिये जाओगे। इतने में एक ईंट उनकी आंख पर आलगी और सारे कपड़े खून से तर होगए। उस समय उस साहसी वीर ने आंख की कुछ परवाह न कर गोली चलानी शुरू कर दी। फायरों के बाद ईंटें बंद होगईं। डकैती समाप्त कर सब लोग वापिस चल दिए। पहले दिन के भी सब थके हुए थे। आधी दूर चलकर प्राय: सब लोग बैठने लगे, बहुत कुछ साहस बांधकर चले ही थे कि एक विद्यार्थी बेहोश होकर गिर पड़ा। होश आने पर उसने कहा अब मुझ में चलने की शक्ति नहीं, तुम मेरे लिए अपने आपको संकट में न फंसाओ, अभी कुछ रात शेष है तुम आसानी से अपने स्थान पर पहुंच सकते हो। मेरा सिर काट कर लेते जाओ, सिर काट लेने पर मुझे कोई पहचान न सकेगा। इस प्रकार आप सब लोग बच सकोगे। साथी की इस बात से सबकी आंखों में आंसू आगये। हमारे दल के नायक ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी को चोट लगने के कारण उस समय पर्याप्त लहू निकल चुका था। सब साथियों को चलने की आज्ञा दी और उसे अपनी पीठ पर उठाया और साहस करके यथास्थान पहुंचा दिया।

"ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी को क्रोध बहुत-कम आता था, किन्तु जब आता, प्रलयानल का रूप धारण कर लेता। प्रायः अभागे खुफिया पुलिस के गुप्तचर ही इनके क्रोध के भाजन बनते थे। एक बार इन्होंने एक खुफिया को इतना पीटा कि वह बहुत दिनों तक बिछौने से उठ न सका। एक बार दूसरे खुफिया की ऐसी मरम्मत की कि वह नौकरी से त्यागपत्र देकर चला गया। नियमित व्यायाम करने से ब्रह्मचारी रामप्रसाद में इतना बल और साहस आगया था। जिस समय मृत्यु-दण्ड का सन्देश सुनाया गया, उस देशभक्त का प्रसन्नता के मारे कई सेर भार बढ़ गया। फांसी के समय जब फांसी के तख्ते के पास पहुंचा तो उसने कहा "I wish the downfall of British Empire" मैं ब्रिटिश साम्राज्य का नाश चाहता हूं। इसके बाद फांसी के तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद "**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि०**" आदि मन्त्रों का जाप करते हुए वह वीर गोरखपुर की जेल में भारत माता की स्वतन्त्रता के लिए हंसते-हंसते फांसी के फन्दे पर झूल गया।"

उपरोक्त घटनायें यह सिद्ध करती हैं कि व्यायाम करनेवाला कठिन से कठिन काम को हंसते-हंसते कर लेता है। उस में कार्य करने की अदम्य शक्ति और स्फूर्ति आजाती है। वह स्वप्न में भी किसी कार्य से नहीं डरता और न ही जी चुराता है। न ही घृणा करके किसी कार्य से नाक और भौवें चढ़ाता है। थकना वा थककर श्वास चढ़ना वा हांपना क्या होता है वह जानता ही नहीं। वह सदैव पर्वत के समान स्थिर वा दृढ़ रहता है। उसके लिए दुःख नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती, तीनों ताप और पांचों क्लेश उससे दूर भाग जाते हैं। वह मौत के साथ भी हंसी करता है। फिर उसके लिए शीत (सर्दी)-गर्मी, भूख प्यास, सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जय-पराजय और

जीवन-मरण, आदि परस्पर विरोधी द्वन्द्वों को बिना किसी चिन्ता वा विलाप के सहना साधारणसी बात होजाती है। व्यायामशील व्यक्ति इन द्वन्द्वों के साथ आनन्द के साथ द्वन्द्वयुद्ध (मल्लयुद्ध) करता है। पातंजल योगभाष्य में महर्षि व्यास "तपो द्वन्द्वसहनम्" द्वन्द्वों के सहने को तप मानते हैं। व्यायाम भी एक प्रकार का तप है क्योंकि प्रतिदिन नियमित व्यायाम करने से शरीर से इच्छापूर्वक परिश्रम द्वारा कष्ट सहने का अभ्यास किया जाता है। अत: व्यायामशील व्यक्ति तपस्वी वा कष्टसहिष्णु स्वभाव से ही हो जाता है। आप शीतकाल में व्यायाम करने वाले और अन्य मनुष्य की दशा को देखकर इस रहस्य को खूब समझ सकते हैं। व्यायाम करनेवाला व्यक्ति अपने सर्व कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक करता रहता है। वह तो प्रात:काल तीन चार बजे ब्राह्ममुहूर्त में माघ पौष के रक्त को जमा देनेवाले भयंकर शीत में भी आकाश की छत के नीचे केवल एक लंगोट बांधे हुए शुद्ध पवित्र शीतल वायु में खूब व्यायाम का आनन्द लूटता है। उधर व्यायाम न करनेवाला शीत के डर के मारे रजाई में मुख छिपाये सिकुड़ा पड़ा रहता है। मल-मूत्र त्याग की इच्छा होते हुए भी बाहर जाते हुए शीत के कारण उस के प्राण निकलते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि व्यायाम से शीत सहन करने की नहीं वरन् गर्मी सहन करने की शक्ति भी आती है। व्यायाम करने से श्वास-प्रश्वास अधिक संख्या में अर्थात् वेग से आते हैं। एक प्रकार से भस्त्रिका प्राणायाम होता रहता है। इससे मस्तिष्क और फेफड़े वज्र (फौलाद) के समान दृढ़ होजाते हैं। सर्दी गर्मी का प्रभाव प्रथम मस्तिष्क तथा फेफड़ों (फुप्फुस) पर ही पड़ता है। अत: सर्दी गर्मी आदि सहने की असाधारण शक्ति व्यायाम द्वारा प्राप्त होती है। यथार्थ बात तो यह है कि सब कोई निर्बल का ही बेरी है। व्यायाम निर्बल को भी सबल बनाता है।

बलवान् और स्वस्थ मनुष्य से यह द्वन्द्व भी डरते हैं। व्यायाम मनुष्य को तपस्वी बनाता है यह कितने महत्त्व की बात है। महर्षि पतञ्जलि महाराज ने तप का बड़ा भारी फल लिखा है।

"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः"

अर्थात्–तप से सब प्रकार की अशुद्धि का नाश होता है। शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त होती है। तप मल आक्षेप और आवरण आदि मानसिक दोषों को दूर करके मन को पवित्र निर्मल बनाता है और वात, पित्त, कफ आदि शारीरिक दोषों को साम्यावस्था में लाकर शरीर को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है। इसलिए महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज भी लिखते हैं कि **'चाहे राजकुमार हो वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।'**

इसी प्रकार व्यायाम से मनुष्य का सब प्रकार के रोगों से छुटकारा हो जाता है। जब सूर्य उदय होता है तो अन्धेरा, उल्लू और गीदड़ सब भाग जाते हैं। इसी प्रकार महर्षि धन्वन्तरि जी के कथनानुसार **"व्याधयो नोपसर्पन्ति सिहं क्षुद्रमृगा इव"** व्यायाम करनेवाले मनुष्य के पास रोग नहीं फटकते। इसी प्रकार की एक घटना है "एक समय एक पण्डित की स्त्री से किसी वैद्य ने कुयें पर पानी मांगा। वह स्त्री किसी कारणवश शीघ्र जल न दे सकी। वैद्य जी क्रोध में आगए और कहने लगे कि इसका बदला मैं उस समय लूंगा जब तेरा पति रोगी होगा। स्त्री बिचारी बड़ी चिन्ता में पड़ी, सारा वृत्तान्त अपने पति से कह सुनाया। पण्डित जी बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने उसी समय एक श्लोक लिखकर वैद्य जी के पास भेज दिया। वैद्य जी उस श्लोक को पढ़कर दौड़े-दौड़े पण्डित जी के पास आये और नम्रतापूर्वक क्षमा याचना करने लगे।" उस श्लोक का तात्पर्य यह है–**वैद्य जी जो लोग अपने वीर्य को व्यर्थ नहीं खोते और**

सदा व्यायाम करते रहते हैं उनको रोगी और आप जैसे वैद्य नहीं डरा सकते।" अत: व्यायाम से बढ़कर शरीर को स्वस्थ और पुष्ट बनानेवाला और कोई उत्तम साधन संसार में नहीं है। क्योंकि जिस देश का राजा बलवान् और सदा न्यायकारी होता है उस देश में चौर, डाकू लुटेरे और पापी-जन नहीं ठहरते। इसी प्रकार जिस मनुष्य ने व्यायाम की साधना से अपने शरीर के राजा (सार) वीर्य को अपने शरीर का अंग बना लिया हो भला ऐसे वीर्यवान् और बलिष्ठ व्यक्ति के पास ये रोग रूपी लुटेरे कैसे फटक सकते हैं। **"भोगे रोगभयम्"** भोग का फल रोग है अत: **भोगी ही रोगी होता है।** व्यायाम रूपी तप की भट्ठी में ब्रह्मचारी के सब मैल, दोष और रोग भस्मसात् होजाते हैं। जिसका आमाशय (पेट) और फुफ्फुस ये शरीर के दोनों मुख्य अंग पुष्ट और स्वस्थ हैं तो फिर चिन्ता करने की कोई बात नहीं। उसे स्वप्न में भी कोई रोग नहीं सता सकता। व्यायाम ही एक ऐसी वस्तु है जिससे आमाशय और फेफड़े रोगरहित और पुष्ट होते हैं। मैं पहले बता चुका हूं कि व्यायाम से हमारी जठराग्नि तीव्र वा दीप्त हो जाती है। आमाशय और पेट की छोटी बड़ी आंतड़ियां खूब शक्तिशाली हो जाती हैं। भोजन खूब पचता और भोजन से रसादि पोषक द्रव्य बनकर शरीर का अंग बन जाता है। मल मूत्रादि विसर्जन क्रियायें खूब भलीभांति होती हैं। क्षुधा (भूख) दोनों समय खूब टूटकर लगती है। इसी प्रकार व्यायाम करने से फेफड़ों को बड़ी भारी शक्ति मिलती है। जब मनुष्य व्यायाम करता है तो श्वास-प्रश्वासों की संख्या तथा वेग बढ़ जाता है। खूब लम्बे लम्बे तथा गहरे श्वास लेता है। इससे फेफड़े तथा सभी अंग काम करने लगते हैं। गहरे श्वास लेने से वायु का बहुत संचार होता है और फेफड़े का काम सारे शरीर में वायु का पहुंचाना तथा रक्त को शुद्ध

करना है। जब शुद्ध वायु में व्यायाम किया जाता है तो शुद्ध वायु श्वास के द्वारा पर्याप्त मात्रा में ओषजन (जीवनशक्ति) लेकर फेफड़ों के अन्दर प्रविष्ट होता है और हृदय शरीर में से आये हुए रक्त को शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेजता है। अशुद्ध रक्त में विष (कार्बन) होता है। शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) को रक्त में छोड़कर और कार्बन को लेकर बाहर चला आता है। इस प्रकार श्वास प्रश्वास के द्वारा फेफड़ों में रक्तशुद्धि का कार्य होता रहता है। इस प्रकार व्यायाम से जहां फेफड़े बलवान् और पुष्ट होते हैं वहां रक्त भी शुद्ध होजाता है। शरीर में रक्त का खूब संचार होता है। जिससे उसका मन शरीर और आत्मा पूर्ण स्वस्थ, बलवान्, सुखी और शान्त हो जाता है। अर्थात् महर्षि धन्वन्तरि जी के कथनानुसार उसे परम आरोग्य की प्राप्ति होती है। व्यायाम छोड़ने से जो संसार की दुर्गति हुई है वह हमारे नेत्रों के सम्मुख है। आज क्या बालक क्या युवा सभी रोगी हैं। हमारी आयु सभी देशों से न्यून है। भारतवर्ष में उत्पन्न होनेवाले एक सहस्र बालकों में से २९४ मर जाते हैं। हमारे देश में प्रति मिनट ३० मनुष्य तथा ६ बालक मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। १९३१ की जनगणना के अनुसार १,२०,३०४ मनुष्य पागल २,३,८१५ बहरे और गूंगे ६०,१,३०० अन्धे और १,४७,९१२ कोढी थे। किन्तु यह संख्या अब तो कई गुणा होगई है। हा ! कितने दुःख की बात है कि प्रतिवर्ष २२,००,००० बाईस लाख युवक और युवतियां राजरोग (तपेदिक) के द्वारा अपने पूर्ण यौवन में विकराल काल के गाल में समा जाते हैं। जिस समय प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ उसके पीछे युद्ध-ज्वर के प्रकोप से सवा दो करोड़ मनुष्य आठ-नौ मास में भारत में मृत्यु की भेंट चढ़ गये।

जिस देश में "जीवेम शरदः शतम्" के अनुसार सौ वर्ष से पूर्व

मरता न था। तीन सौ या चार सौ वर्ष की आयु का पाना हमारे पुरुषाओं के लिए साधारण सी बात थी। जिस देश में अर्जुन भीम के समान योद्धा थे जो हाथियों को पकड़ पकड़ आकाश में उछालते थे। महाभारत के गिरे हुए समय में भी ब्रह्मचारी भीष्म पितामह की आयु १७६ वर्ष तथा महर्षि व्यास की आयु ३०० वर्ष से अधिक थी। और इन ऋषियों की सन्तान की यह दुर्दशा क्यों हुई ? इसका केवल एकमात्र कारण यही है कि हम ऋषियों की प्यारी शिक्षा ब्रह्मचर्य और इसके मुख्य साधन व्यायाम को छोड़ बैठे। हमारी प्रवृत्ति तो सर्वथा विषय भोगों में ही है। हम विषयी भोगविलासप्रिय और कामवासना के दास बन चुकें हैं। आज के युवक वा यवुती की अखाड़े वा व्यायामशाला में जाने की रुचि वा प्रेम नहीं। इन्हें तो स्वांग, थियेटर, सिनेमा और नाचघर प्यारे हैं। नगरों में सिनेमाघरों के आगे कितनी भारी भीड़ लगी रहती है और अखाड़े खाली पड़े रहते हैं। एकाध सौभाग्यशाली व्यक्ति ही उधर को मुख करता है। इतने पर भी स्वास्थ्य और बल की आशा करते हैं और हमारे युवक अखाड़ों पर जाकर करें भी क्या ? उन्हें तो दण्ड-बैठक और कुश्ती से इसलिए घृणा है कि कहीं इनके कोमल शरीर को अखाड़े की धूल वा मिट्टी न लग जाये और इनके सुन्दर वस्त्र वा शरीर ही न बिगड़ जायें ? ऐसे ही व्यायाम-भीरु नपुंसकों (हीजड़ों) से यह देश भरा पड़ा है और इधर इन्हीं कोमल कन्धों पर ही भारत माता की स्वतन्त्रता की रक्षा का भार है। किन्तु इनके ऊपर बाल बनाने, मांग फाड़ने और अनेक प्रकार के शृंगार करने और नाच, स्वांग, सिनेमा देखने का भूत सवार है। देश धर्म भाड़ में जाये, न इनको अपने स्वास्थ्य का ही ध्यान, न ही अपने शरीर से प्यार है। अतः हमारे आगे अन्धकार ही अन्धकार है।

भोले युवकों को इतना भी ज्ञान नहीं कि यदि एक मशीन को वर्षभर न चलाया जाय तो उसकी दशा कितनी बिगड़ जाती है। उसे पुन: चालू करने के लिए नई मशीन के मूल्य से भी कहीं अधिक धन व्यय कर देना पड़ता है। इसी प्रकार हमारा शरीर भी व्यायाम वा कार्य न करने से, सर्वथा निर्बल और विकृत, रोगों का घर बन जाता है। पुन: यत्न करने पर भी ठीक होने में नहीं आता। सब जानते हैं कि तालाब का पानी स्थिर होने से ही सड़ता है। नदी झरनों का पानी चलने के कारण निर्मल और कांच के सदृश चमकता है। क्या कारण है कि हमारे युवक व्यायाम नहीं करते, इस जीवनोपयोगी वस्तु से क्यों विमुख हैं। इसका मुख्य कारण कुशिक्षा का प्रभाव अथवा शिक्षा का अभाव ही है। माता पिता बालक उत्पन्नं तो कर देते हैं किन्तु वे उनकी शारीरिक वा मानसिक उन्नति का कुछ ध्यान नहीं रखते। उनका कर्त्तव्य तो यह है कि वे अपने सन्मुख बालकों को नित्य, प्रतिदिन व्यायाम करायें तथा उनके कल्याणार्थ उत्तम शिक्षा-गुण-कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों को धारण करायें, यही माता-पिता आचार्यों और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। यही ऋषि महर्षियों का उपदेश, वेद शास्त्रों की आज्ञा और मनुष्य मात्र का धर्म है। किन्तु यह धार्मिक तथा स्वयं व्यायाम करनेवाले मनुष्य ही कर सकते हैं। यदि बालकों को व्यायाम का महत्त्व समझा दिया जाये, प्रतिदिन बाल्यकाल से अभ्यास भी कराया जाए तो वे बड़े होने पर व्यायाम कदापि नहीं छोड़ सकते। योरुप के लोग प्राय: ऐसा ही करते हैं। इसलिए उनके स्वास्थ्य हमारे से कहीं अच्छे हैं।

जो बाल्यावस्था में व्यायाम का अभ्यास नहीं करते वे युवावस्था में भी अभ्यास कैसे कर सकते हैं। उन्हें व्यायाम भार दिखाई देता है। फिर बुढ़ापे की बात न पूछो, उस समय तो उन्हें उठना बैठना भी भारी

हो जाता है। प्रथम तो माता पिता का ध्यान नहीं। द्वितीय हमारी शिक्षा में व्यायाम के लिए कोई स्थान नहीं। तृतीय हमारे देश में व्यायाम करनेवालों का कोई सत्कार वा मान नहीं। इसलिए हमारे युवकों में उत्साह शक्ति जीवन और प्राण नहीं। बात तो यथार्थ में यह है कि हमारे स्कूलों की शिक्षा इतनी व्यर्थ, अरोचक निकम्मी और अधूरी है कि इससे किसी प्रकार का कोई भी लाभ नहीं। झूठी सभ्यता की (पश्चिमी) लहर ने हमारे विद्यार्थी-समाज को आलसी, भोग-विलासी प्रिय, शृंगार, फैशन का क्रीत किंकर बनाकर इसके स्वास्थ्य का बुरी तरह सर्वनाश कर डाला है। हमारी शिक्षणसंस्थाओं में शिष्टाचार सदाचार और स्वास्थ्य की शिक्षा ही नहीं दी जाती। अत: अपने विद्यार्थियों की दीन हीन शारीरिक निर्बल अवस्था को देखकर रोना आता है। १६ और २५ वर्ष की वृद्धि अवस्था में जिनके मुखमण्डल सदैव हीरे की भांति चमकने चाहियें थे आज वे निस्तेज बलहीन मनमलीन लुटे और मुंहपिटे से दिखाई देते हैं। कितने तो पुस्तकों को पढ़ते-पढ़ते सूखकर कांटे के समान होजाते हैं। अपने स्वास्थ्य का नाश करके अपने मस्तिष्क और हृदय को भी निर्बल कर डालते हैं। ऐसे पुस्तकी कीड़ों को व्यायाम का उपदेश करें तो वे हमारे पास तो व्यायाम के लिए समय नहीं ऐसा कहकर टाल देते हैं। ऐसे ही कितने विद्यार्थी अपनी तरुण अवस्था में मृत्यु के ग्रास बनते हैं।

स्कूल कॉलिजों में व्यायाम के नाम पर वालीवाल, हॉकी, फुटबाल आदि अंग्रेजी ढंग के खेल खिलाये जाते हैं। उनमें इने गिने थोड़ेसे ही विद्यार्थी भाग लेते हैं वा ले सकते हैं। इन खेलों से कोई विशेष लाभ नहीं। उनमें समय और धन का ही नाश होता है। क्या हुआ थोड़े बहुत विद्यार्थी व्यायाम करते हैं। नहीं तो प्राय: अधिकतर विद्यार्थी और

शिक्षक लोग ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि व्यायाम करना अनपढ़ मूर्ख और नीच लोगों का कार्य है। इसीलिए विद्यार्थी तथा शिक्षित समाज के स्वास्थ्य की दुर्दशा है। इनका आमाशय ही ठीक कार्य नहीं करता, अजीर्णता तथा कोष्ठबद्धता का रोग प्राय: सबको रहता है। किसी के पेट में गुड़गुड़ाहट है, किसी को वायु का शूल तंग करता है, किसी की तिल्ली बढ़ी हुई है, किसी का जिगर खराब है। किसी को जुकाम है तो किसी को खांसी, किसी का हृदय धड़कता है तो किसी की छाती में पीड़ा रहती है। प्राय: सभी किसी न किसी रोग से पीड़ित हैं। किसी से भी पूछो, "ठीत तो हो" ? उत्तर मिलता है, "नहीं मेरी तबियत खराब है।" "मेरे स्वास्थ्य में गड़बड़ ही रहती है।" ऐसी अवस्था क्यों है ? हम पहले ही उत्तर देचुके हैं कि आमाशय पेट वा फेफड़े (फुप्फुस) के बिगड़ने से ही सब रोग होते हैं और इनको स्वस्थ रखने का एकमात्र उपाय व्यायाम है। यह हम सिद्ध कर चुके हैं। प्राय: संसार के सभी विद्वानों, डाक्टरों और वैद्यों, महापुरुषों का एक मत है कि मनुष्य को स्वस्थ रखने में व्यायाम से उत्तम संसार में कोई साधन नहीं है, इसलिए संसार के वैद्यों और डाक्टरों के परम गुरु श्री धन्वन्तरि जी का यह वचन– आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।

परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति व्यायाम से ही होती है। कितना सत्य से कूट-कूटकर भरा हुआ है। यथार्थ में तो बात यह है कि संसार में आज तक तो कोई ऐसा मनुष्य हुआ नहीं जिसने बिना व्यायाम के पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति की हो। महर्षि धन्वन्तरि जी व्यायाम का गुणगान करते हुए यहां तक लिखते हैं कि–

व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम्।
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते।।

व्यायाम करनेवाला मनुष्य गरिष्ठ, जला हुआ अथवा कच्चा किसी प्रकार का भी खराब भोजन क्यों न हो, चाहे उसकी प्रकृति के भी विरुद्ध हो, भलीभांति पचा जाता है और कुछ भी हानि नहीं पहुंचाता। व्यायाम करनेवाले मनुष्य को आप इस प्रकार कहते हुए कभी नहीं सुनेंगे कि मुझे भोजन नहीं पचता वा मल साफ नहीं होता अथवा अपचन रहता है। यह दुर्गति तो व्यायाम न करनेवाले के आमाशय की ही रहती है। उन्हें अजीर्ण के कारण सदैव मलबन्ध (दायमी कब्ज) रहता है किसी को मन्दाग्नि का रोग रहता है। किसी को अपचन के कारण (विरेचन) दस्त आते हैं, सच्ची भूख कभी नहीं लगती, कभी खुलकर (टट्टी) शौच नहीं आता। उनकी बड़ी अन्तड़ी तथा गुदा द्वार सदैव मल से भरा रहता है। खट्टी-खट्टी डकारें आती हैं, कभी सिर दर्द, कभी जुकाम, खांसी सताते रहते हैं। ऐसे लोगों का शरीर प्राय: रोगों का घर ही बना रहता है : उनके सारे जीवन की कमाई डाक्टरों और वैद्यों की भेंट चढ़ती है। किन्तु उन्हें स्वास्थ्य और सच्चे सुख के दर्शन जीवनभर कभी नहीं होते और स्वास्थ्य के बिना जीवन का आनन्द है ही नहीं। **क्योंकि स्वास्थ्य ही आनन्द और सौख्य का उद्‌गम है।**

अत: स्वास्थ्य के प्रेमियो ! सदैव याद रखो कि डाक्टर, वैद्य आपको कभी स्वस्थ नहीं बना सकते। इनकी औषधियां केवल आपकी जेबों को खाली करेंगी। स्वास्थ्यप्राप्ति की सब औषधियों से बढ़कर परम औषध व्यायाम ही है। विलायत का प्रसिद्ध पहलवान मिस्टर सैंडो अपनी प्रारम्भिक अवस्था में रोगी ही था। कोई अच्छे से अच्छा डाक्टर भी उसे स्वस्थ नहीं कर सका। अन्त में उसने परम औषध व्यायाम का सहारा लिया। उसी की कृपा से उसकी पहलवानी का संसार में डंका बजा और अन्त तक वह सम्पूर्ण रोगों का इलाज व्यायाम द्वारा ही

करता रहा। मि० सैंडो का यह वचन कि सम्पूर्ण रोगों का इलाज व्यायाम से किया जा सकता है, महर्षि धन्वन्तरि जी की आज्ञा के अनुसार तथा सर्वथा सत्य है।

यदि उक्त सत्य के साक्षात् दर्शन करना चाहो तो बड़ौदा में जाकर श्रद्धेय ब्रह्मचारी प्रोफेसर माणिकराव जी के दर्शन करो जो आज भी, ८५ वर्ष से अधिक वृद्ध आयु में भी युवा हैं तथा व्यायाम और मालिश के द्वारा सभी रोगों की चिकित्सा करते हैं। उन्हीं के पुरुषार्थ के कारण आज बड़ौदा में चार-पांच लाख रुपये की व्यायामशाला और शस्त्रागार बना हुआ है। जिसके दर्शन करके दर्शक आश्चर्यान्वित होकर उनके पुरुषार्थ की सराहना करते हैं। इतना ही नहीं उनकी कृपा से महाराष्ट्र तथा दक्षिण के लोग बहुत कुछ बदल गये हैं। वहां व्यायामशालायें प्राय: नगर में तो सब जगह बन गई हैं। शिक्षित लोगों का भी झुकाव उधर व्यायाम की ओर होने लगा है। इसी प्रकार सारे देश में व्यायाम के प्रचार की अत्यन्तावश्यकता है। सुधार तो तब हो जब हमारी सरकार ऐसा राज्यनियम ही बनादे जिससे विवश होकर सबको अनिवार्य रूप से व्यायाम करना पड़े। व्यायाम न करनेवाले को सरकार दण्ड दे और सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखे। हमारी शिक्षणसंस्थाओं में व्यायाम का समुचित प्रबन्ध हो। अन्य विषयों की भांति इसकी भी परीक्षा हो। इसमें उत्तीर्ण होनेवाला ही उत्तीर्ण समझा जाये। देखें फिर व्यायाम का प्रचार तथा हमारे स्वास्थ्य का सुधार कैसे न हो। नगर-नगर ग्राम और देश के प्रत्येक कोने में व्यायामशालायें व अखाड़े चलाये जायें। स्वस्थ और अधिक बलिष्ठ व्यक्तियों को पारितोषिक और सम्मान दिये जायें। जो निर्बल और रोगी हों उन्हें विवाह करने और सन्तान पैदा करने की आज्ञा न दी जाये। केवल स्वस्थ और बलिष्ठ युवा स्त्री-पुरुष ही सन्तान

उत्पत्ति और विवाह के अधिकारी हैं। जिनकी सन्तान अधिक सुन्दर स्वस्थ और बलवान् हों उनको अनेक प्रकार के पारितोषिक वा मासिक वृत्तियां देकर सरकार प्रोत्साहन दे। निर्बल रोगी सन्तान पैदा करनेवाले को भी यथोचित दण्ड दें, तब कहीं इस पतित भारत का भाग्य उदय हो सकता है। फिर देश खोई हुई प्राचीन गौरव गरिमा को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से घृणा करके कभी भी कोई देश नहीं उठ सकता।

जर्मन राष्ट्र को उठानेवाले हर हिटलर के व्यायाम के प्रति कितने सुन्दर भाव थे। "मेरा संघर्ष" नाम की पुस्तक में वे लिखते हैं कि "अपनी शिक्षा पद्धति में सर्वप्रथम स्थान ज्ञानोपार्जन अथवा अक्षर अभ्यास को नहीं-व्यायाम शिक्षा तथा स्वस्थ शरीर निर्माण को देना होगा।" वे आगे लिखते हैं "क्योंकि सर्वमान्य नियम यह है कि स्वस्थ और बलवान् आत्मा स्वस्थ और बलवान् शरीर में ही पाई जाती है।" हर हिटलर अपने इन सुन्दर विचारों को थोड़े ही समय में कार्य रूप में परिणत कर अपने देश को एक बार तो उन्नति के शिखर पर चढ़ाकर दिखा गया। उनके जीवन की एक घटना है। एक बार कालिजों ने दीर्घावकाश (लम्बी छुट्टी) बन्द कर दी और दस हजार विद्यार्थियों को जिनमें लड़के-लड़कियां दोनों थे, बुलाकर कहा कि रायन नदी से एक लम्बी नहर तुम ने तीन मास की छुट्टियों में खोदकर निकालनी है। यही आपके देशप्रेम की परीक्षा है। विद्यार्थियों ने अपने देश के नेता की इस आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया और कई सौ मील लम्बी नहर कठोर परिश्रम करके तीन मास के स्थान पर ढाई मास में ही खोदकर तैयार करदी। इसका कारण नियमित व्यायाम तथा शारीरिक श्रम करने का अभ्यास ही है। सभी पचिमी देशों में

व्यायाम शिक्षा का अंग बन चुका है। वहां के सुधारक व्यायाम के महत्त्व को भलीभांति समझते हैं।

अत: पश्चिम में सर्वत्र व्यायाम का खूब प्रचार है। वहां के विद्वानों के तो इस प्रकार के विचार बन चुके हैं जिस प्रकार कि जर्मन प्रोफेसर लिखता है–"अच्छा हो वह युवक मर जाये जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्ति को पुष्ट नहीं बनाता।" भारत के प्रसिद्ध वैद्य पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारावाले लिखते हैं "मनुष्य शरीर की बनावट ही इस प्रकार की है यदि यह चलता रहे, काम काज करता रहे तो स्वास्थ्य रहता है अन्यथा रोगी हो जाता है। हिन्दुओं के भीतर जब व्यायाम का रिवाज था बड़े-बड़े योद्धा यहां हो चुके हैं। भीम जैसे मनुष्यों का होना भी यहीं सम्भव था जो हाथी को उठाकर फैंक सकते थे। कलयुगी भीम राममूर्ति जी हाथी को छाती पर से गुजार सकता है वह भी अपनी सारी शक्ति का स्रोत ब्रह्मचर्य और व्यायाम को ही वर्णन करता है। वही दूसरे स्थान पर लिखते हैं कि व्यायाम के बिना अधिक काल तक ब्रह्मचारी रहना असम्भव है। व्यायाम से बहुत ही लाभ हैं। रुधिर बहुतसा तो हमारे अंगों के भीतर खर्च होता है और हमारे शरीर को दृढ़ करता है। जिसका वीर्य बनकर बाहर निकल जाता था वह शरीर के भीतर ही रहता है और इससे बढ़कर यह भी लाभ है कि जो वीर्य बन जावे तो व्यायाम से फिर शरीर के भीतर शोषण होकर शरीर और हड्डियों को दृढ़ करेगा।

जिसका निकलने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा वरन व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अत: व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए अपितु नित्य प्रति करना चाहिए।

यूनान का प्रसिद्ध वैद्य अफलातून लिखता है कि मल को जमा होने

से रोकने के लिए व्यायाम से उत्तम कोई वस्तु नहीं है। वह बिना कष्ट के मल को पचाता है और प्रकृति का सहायक है।

बूक्षली सीना लिखते हैं कि जिस मनुष्य में व्यायाम का सामर्थ्य है वह सम्पूर्ण उपायों से युक्त है और व्यायाम न करनेवाला प्राय: क्षय (तपेदिक) ग्रस्त होता है।

कुरेशी कहता है "व्यायाम त्यागने से शक्तियां क्षीण होती हैं। व्यायाम के लाभ बहुत हैं व्यायाम मल को दूर करता है। जठराग्नि को उद्दीप्त करता है और पट्ठों को दृढ़ करता है और रोमकूपों को खोलता है।"

डॉ० निकोलिश लिखता है कि "व्यायाम मांस पट्ठों को बल देता है जिससे मानवीय शरीर के अवयव अपना काम उत्तमता से कर सकते हैं। इससे-नस-नाड़ियां और सम्पूर्ण रक्त बनानेवाले अंगों को पुष्टि मिलती है। इससे क्षुधा बढ़ती है और जठराग्नि तेज होती है। फेफड़ों की नसें पेशियां अधिक बल से काम करती हैं और श्वास बढ़ जाता है छाती फैलती है। फेफड़े बढ़ते हैं, मस्तिष्क में अधिक मात्रा में उत्तम रक्त आता है। उत्तम रक्त के पट्ठे अधिक उत्तमता से मल को बाहर निकालते हैं। जिसका निकालने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा। वरन् व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अत: व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिये। अपितु नित्य करना चाहिए।"

डाक्टर सिलवस्टर ग्राहम लिखते हैं कि "व्यायाम से रक्त का संचार भ्रमण बढ़ता है और रक्त लाखों बाल से भी सूक्ष्म सब शरीर की नसों में पहुंच जाता है। व्यायाम से सब अंगों में बल स्फूर्ति आती है। सब अंगों में पूर्णता लचक वृद्धि, सौन्दर्य कान्ति और बल उत्पन्न होता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिए सबसे बढ़कर पुष्टिदायक है।"

डॉ० ब्लैक लिखता है कि "जवानी में उचित व्यायाम को इन बातों से छोड़ नहीं देना चाहिए जैसा कि प्राय: कह दिया करते हैं- मुझे समय नहीं मिलता, आज ऋतु अच्छा नहीं है, पोशाक अच्छी नहीं है, लोगों के सामने करते बुरा प्रतीत होता है, व्यायाम करने को जी नहीं चाहता, इससे शरीर कोमल नहीं रहता इत्यादि। व्यायाम शरीर के लिए आवश्यक वस्तु है।"

एक और डॉ० लिखता है कि व्यायाम से प्राय: रोग रुक जाते हैं। कई दूर हो जाते हैं। बहुत रोगों का स्रोत आलस्य है।"

एक प्रसिद्ध वैद्य एक स्थान पर लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए भी व्यायाम आवश्यक है। व्यायामी का वीर्य पुन: उसी शरीर में खपकर दृढ़ करता है। जो मनुष्य व्यायाम नहीं करता तो उसे स्वप्न दोष होने लगता है। युवावस्था के आरम्भ में व्यायाम की अत्यान्तावश्यकता है। यह वह काल है जब कि शरीर में वीर्य बनता है और कामोत्तेजना आरम्भ होती है। काम के वेग के कारण इस अवस्था में लड़के लड़कियां व्यसनों में फंस जाते हैं। यह समय वीर्य निकालने का नहीं परन्तु वास्तव में शरीर को बढ़ाने गांठने दृढ़ बनाने के लिए होता है। वीर्य सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं होता, इसे शरीर में खपाना चाहिए। यदि बुरे विचार न हों और व्यायाम किया जाये तो वीर्य शरीर में लय होकर शरीर को दृढ़ बनाता है। यही सब वैद्य, डा़क्टरों का मत है।

डॉ० हालर साहब एक स्थान पर लिखते हैं कि 'वीर्य बहुत अमूल्य रत्न है जो बल का भण्डार है। व्यायाम से यह रक्त में पुन: मिल जाता है और शरीर में अद्‌भुत परिवर्तन उत्पन्न करता है। दाढ़ी, बाल, अस्थि और सब दैनिक व्यवहारों को बल देता है। नपुंसकों में यह

परिवर्तन इसलिए नहीं होता कि उनमें वीर्य नहीं होता। व्यायामी अपनी इस वीर्य की शक्ति की दूसरों की अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकता है।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज राजा के कर्त्तव्य के विषय में सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि "प्रातःकाल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र कर वा करा.......नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् कवायद कर करा......शस्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोशों को देख.......व्यायामशाला में जा व्यायाम करके भोजन के लिए 'अन्तःपुर' अर्थात् पत्नी आदि के निवास स्थान में प्रवेश करे।"

अपने जीवनकाल में महर्षि दयानन्द जी महाराज मेवाड़ के महाराजा सज्जनसिंह तथा इसी प्रकार अनेक अन्य राजा-महाराजाओं को अपने स्वास्थ्य सुधार तथा ब्रह्मचर्य की रक्षार्थ नित्यप्रति व्यायाम करने की शिक्षा मौखिक तथा पत्रव्यवहार द्वारा देते रहे। महर्षि दयानन्द जी महाराज स्वयं प्रतिदिन नियम से भ्रमण तथा व्यायाम करते थे। वे कार्तिक संवत् १९३५ कार्तिक के मेले पर धर्मप्रचारार्थ गये थे। पं० घासीराम जी द्वारा लिखित महर्षि जी के जीवन चरित्र में स्वामी जी महाराज की दिनचर्या के विषय में लिखा है "पुष्कर में महाराज बहुत सवेरे भ्रमण करने चले जाते थे। वापस आकर दुग्ध और ब्राह्मी का स्वरस पान करते थे और वेदभाष्य लिखाने बैठ जाते थे। ग्यारह बजे तक वेदभाष्य लिखाते थे और फिर स्नान और दण्ड मुग्दर का व्यायाम करके भोजन पाते थे।"

इस प्रकार नियमित व्यायाम तथा निष्कलंक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन से महर्षि दयानन्द जी महाराज का शरीर अत्यन्त सुन्दर, सुडौल और सुदृढ़ होगया था। जिस के दर्शन करने पर दर्शक आश्चर्य में पड़ जाते थे। उनकी मोहिनी मूर्ति सबके मन को मोह लेती थी। उनका ६ फुट

९ इंच लम्बा सुन्दर शरीर, आजानु विशाल बाहु, उभरी हुई चौड़ी छाती, मोटी-मोटी जंघाएं, सुती हुई कड़ी पिण्डलियां, तेजोमय विशाल ललाट, सुन्दर चमकीली आंखें, वज्रसम सघन सुविभक्त ओजपरिपूरित दर्शनीय सुन्दर शरीर की छवि विरोधी के मन में भी अगाध श्रद्धा पैदा करती थी। अतुल बल और शक्ति के वे भण्डार थे। महर्षि ने कर्णवास में राव कर्णसिंह की तलवार तोड़कर, जालन्धर में सरदार विक्रमसिंह की दो घोड़ों की बग्घी को रोककर और काशी में कीचड़ में फंसी हुई दो बैलों से न निकलनेवाली गाड़ी को भी अकेले ही अपने भुजबल से कीचड़ से बाहर निकालकर तथा इसी प्रकार की अनेक घटनाओं से अपने बल और शक्ति का परिचय देकर दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। कांशी में मस्त साण्ड (जिससे आने जानेवाले सब डरते थे) आपको देखकर मार्ग छोड़कर चला गया। भयंकर हिंसक भालू (रीछ) तथा जंगल का राजा सिंह भी आपसे डरकर कुत्ते के समान पूंछ दबाकर भाग गया।

जब माघ पौष में रक्त को जमा देनेवाली शीतल पवन चलती है, जो शरीर को छेदती हुई पार निकल जाती है, जिस समय लोग घरों के अन्दर गर्म कपड़े और रजाई ओढ़कर ठण्ड के मारे सिकुड़े पड़े रहते हैं, जब बाहर निकलते उनका हृदय कांपता और प्राण निकलते हैं ऐसे भयंकर शीतकाल में योगी दयानन्द गंगा किनारे ठण्डे रेत पर केवल एक लंगोट पहने हुए चन्द्रमा की शीतल चांदनी में सारी रात्रि आसन लगाये प्रतिदिन ध्यान में मस्त बैठे रहते थे। एक दिन बदायूं के क्लेक्टर एक पादरी के साथ गंगा पर आनिकले और महर्षि जी को ऐसी अवस्था में नंगा बैठे देखकर आश्चर्य में पड़ गये और पूछने लगे कि क्या आपको ठण्ड नहीं लगती ? महर्षि जी ने उत्तर दिया-जैसे आपके मुख को नंगा

होने पर भी ठण्ड नहीं लगती इसी प्रकार मेरा शरीर सदा नंगा रहता है और इसे शीतोष्ण सहने का अभ्यास पड़ गया है। पादरी और क्लेक्टर कुछ देर बातें कर प्रणाम करके चले गये। इसी प्रकार 'माह' मास की ठण्ड में एक स्थान पर आप उपदेश कर रहे थे। श्रोतागण भारी भारी गरम कपड़ों में लिपटे हुए भी कांप रहे थे। ये कौपीनधारी महात्मा एक लंगोट में ही मस्त थे। किसी ने इसका कारण पूछा। उत्तर मिला **'योग का अभ्यास'**। किसी ने पूछा क्या इससे भी कुछ अधिक शक्ति आसकती है ? तब महाराज ने अंगूठे घुटनों पर रखकर बल लगाया तो झट सारे शरीर से पसीना गिरने लगा। सब लोग चकित थे कि ऐसी ठण्ड में पसीना ! ! **व्यायाम, ब्रह्मचर्य और योग** से तपाये हुए शरीर पर सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्व कुछ भी प्रभाव नहीं डालते। इतना ही नहीं, व्यायामादि साधन शरीर को इतना बलिष्ठ बना देते हैं कि मारक विष भी निष्प्रभाव होते देखे गये हैं। महर्षि दयानन्द जी महाराज को पापियों ने १६ बार विष दिया। किन्तु वे उनके जीवन का कुछ भी न बिगाड़ सके। जिस समय वेश्या ने उनके शत्रुओं से मिलकर अन्तिम बार भयंकर हालाहल विष दिया तो वह सारे शरीर में रोम-रोम से फूटकर निकलने लगा, तब डाक्टर सूरजमल तथा लक्ष्मणदास जो महाराज के अनन्य भक्त थे और जिन्होंने आपकी बड़ी श्रद्धा से सेवा शुश्रूषा तथा चिकित्सा भी की थी, इस भयंकर अवस्था को देखकर कहने लगे यदि ऐसा भयंकर विष और किसी मनुष्य को दे दिया जाता तो वह पांच मिनट में ही मर जाता। किन्तु इतना ही नहीं, जोधपुर महाराजा के डाक्टर अलीमरदान खां, जो पहले दर्जे के खुशामदी और अत्यन्त नीच प्रकृति के थे, स्वामी जी महाराज को औषधि के स्थान पर विष ही देते रहे। क्योंकि इन्हें राज्य के उच्च अधिकारी पौराणिक

घमण्डी जागीरदार पुष्करनाथ ब्राह्मण ने ७००) रुपये तथा दो रण्डियों ने पांच-पांच सौ रुपये कुल १७००) रुपये इसलिए दिये थे कि स्वामी जी को विष दिया जाये। इतनी अधिक मात्रा में और बार-बार विष दिये जाने का यह प्रभाव हुआ कि स्वामी जी को भयंकर दस्त लगे। प्रतिदिन सौ-सौ दस्त आने लगे, खून और आंतें कट-कट कर गिरने लगीं। ऐसी भयंकर अवस्था होने पर भी महाराज जी अत्यन्त शान्त और धैर्य से रहे। ऐसा भयंकर विष देने के पीछे भी एक मास तक और जीवित रहे। मृत्यु के समय मुख पर किसी प्रकार के शोक वा घबराहट के चिह्न न थे। अपने घोरतम कष्ट को इस प्रकार सहन करते थे कि मुख से एक बार भी हाय वा अन्य कष्टसूचक शब्द न निकलता था। महाराज बड़ी सावधानी से रहे, अन्त समय कई वेदमन्त्र पढ़े, संस्कृत तथा भाषा में ईश्वरोपासना और ईश्वर का गुणकीर्तन किया। कुछ देर सामाधि लगाकर आंखें खोल दीं और यों कहने लगे–हे दयामय ! हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर ! ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो ! ! ! तैंने अच्छी लीला की।" यह कहकर श्वास को रोककर एकदम बाहर निकाल दिया।

प्रिय पाठकगण ! आप भी सच्चे ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द का अनुकरण करते हुए ब्रह्मचर्य के आनन्द को लूटो। मृत्युंजय कहलाओ और अपने पवित्र मनुष्य जीवन को सफल बनाओ।

।। ओ३म् शम्।।

अब तक इस संस्करण सहित २८००० छप चुकी है।

मुद्रक : ऑटोमैटिक ऑफसेट प्रेस, दयानन्दमठ, रोहतक।

दूरभाष : ०१२६२–५७७७४

आर्य समाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचारकरके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना करना चाहिए।

८. अवद्यिा का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। अपितु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१० सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी निमय पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

हमारे प्रमुख प्रकाशन

१. व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रदीप उद्योत, विमर्शसहित) १०००—००
२. अष्टाध्यायी १५—००
३. कारिकाप्रकाश १०—००
४. लिङ्गानुशासनवृत्ति १०—००
५. फिटसूत्रप्रदीप ५—००
६. छन्दःशास्त्रम् २०—००
७. काव्यालंकारसूत्राणि १०—००
८. निरुक्त (हिन्दीभाष्य) २००—००
९. योगार्यभाष्य (आर्यमुनि) १०—००
१०. सांख्यार्यभाष्य (आर्यमुनि) ४०—००
११. मीमांसार्यभाष्य (३ भाग) २६०—००
१२. वैशेषिकार्यभाष्य ६०—००
१३. न्यायार्यभाष्य १००—००
१४. वेदान्तार्यभाष्य १२०—००
१५. भारतेतिहासः १०—००
१६. अष्टाध्यायीप्रवचनम् (६ भाग) ६००—००
१७. छान्दोग्योपनिषद्भाष्यम् २००—००
१८. वृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यम् १२०—००
१९. उपनिषत्समुच्चय १००—००
२०. इण्टरनेशनल फिलासफी ऑफ योगा १००—००
२१. मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प ३०—००
२२. दयानन्दप्रकाश ५०—००
२३. धर्मनिर्णय (१—४ भाग) ८०—००
२४. वै
२५. दे
२६. स
२७. स
२८.
२९.
३०.
३१.
३२.
३३. ओमानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ १००—००
३४. सुखी जीवन १५—००
३५. महापुरुषों के संग में १०—००
३६. घर का वैद्य (१—५ भाग) ५०—००
३७. दैनंदिनी १०—००
३८. ब्रह्मचर्य के साधन (१—११ भाग) ६०—००
३९. संस्कृतप्रबोध १०—००
४०. गीताविवेक १०—००
४१. कुलियात आर्यमुसाफिर (दो भाग) १२०—००
४२. दयानन्द लहरी १०—००
४३. विरजानन्दचरितम् १५—००
४४. रामायणार्यभाष्य (दो भाग) ३२०—००
४४. महाभारतार्यभाष्य (दो भाग) ४५०—००

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (हरयाणा)